'शिक्षा का अधिकार' कानून—एक समीक्षा

प्रोफेसर आर० जे० सिंह *
डा० राखी खरवन्दा**
डा० निधि गुलाटी***

प्रस्तावना

'शिक्षा को सर्वजनीन बनाने' अथवा 'शिक्षा सबके लिए सुलभ हो' का नारा आज हमें भले ही कोई नई बात न लगे, किन्तु आज से कुछ सौ वर्ष पूर्व इस प्रकार के विचार कल्पना से परे की वस्तु थे। विश्व के सभी देशों में शिक्षा केवल कुलीन और उच्च वर्ग के लोगों का विशेषाधिकार मानी जाती थी। किन्तु बदलते हुए समय के साथ दार्शनिकों, शैक्षिक चिन्तकों और समाज सुधारकों ने सभी के लिए शिक्षा की आवश्यकता को रेखांकित करना प्रारम्भ किया। उदाहरण के लिए यूरोप में अठारहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी क्रांति के जनक एवं महान शिक्षाशास्त्री व दार्शनिक रूसो ने न केवल सम्राट लुई सोलहवें के साम्राज्य को समाप्त करके उसके स्थान पर एक जनतांत्रिक राज्य की स्थापना हेतु आवाज बुलन्द किया, बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रौढ़ों के वर्चस्व को ध्वस्त करके बच्चों के जनतांत्रिक संसार की स्थापना पर बल दिया। स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृभाव के सिद्धान्तों को उसने बच्चों के संदर्भ में व्याख्यायित किया—नन्हे—मुन्ने नागरिकों के लिए नन्हे से शैक्षिक राष्ट्रकुल की स्थापना हो जिसमें बच्चों की रूचियों व आवश्यकताओं की पूर्ति का भाव सर्वोपरि हो, बच्चे ही शिक्षा की केन्द्रीय धुरी बनें।

इसी प्रकार शिक्षा की प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिक बनाने का संकल्प लेने वाले स्विटजरलैण्ड के महान शिक्षाशास्त्री पेस्टालॉजी ने शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति का 'जन्म सिद्ध अधिकार' माना। उसका कहना था—"I want to teach the beggers to live like men." और यह शिक्षा के अधिकार द्वारा ही सम्भव था।

वस्तुतः यदि कोई राष्ट्र अपना पूर्ण विकास चाहता है तो उसे अपने देश की योग्यता व प्रतिभा के समस्त भण्डार—अर्थात् सभी नागरिकों—को सुशिक्षित करना होगा। कारण, शिक्षा ही किसी भी व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र की समस्त प्रगति और विकास का माध्यम बनती है। यही वजह है कि आज दुनियाँ के सभी देशों में शिक्षा को मानवाधिकार के रूप में व्याख्यायित और चरितार्थ किए जाने पर जोर है।

भारतीय संदर्भ :

इस दृष्टि से यदि हम भारतीय शिक्षा के इतिहास में झाँककर देखना चाहें तो हमें विदित होगा कि भारतीय शिक्षा में पहली बार ब्रिटिश शासनकाल में 19 मार्च 1910 को

---

* पूर्व कुलपति, महात्मा गॉधी काशीविद्यापीठ, वाराणसी एवं पूर्व प्रतिकुलपति तथा शिक्षा संकायाध्यक्ष, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

**चीफ एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर, आर्यावर्त ग्रुप आफ एजूकेशनल इंस्टीट्यूट्स, लखनऊ।

***वाइस प्रिंसिपल, आर्यावर्त इंस्टीट्यूट आफ हायर एजूकेशन, लखनऊ।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव असेम्बली में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रखर नेता गोपाल कृष्ण गोखले ने पूरे भारत में प्रारंभिक शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने का प्रस्ताव रखा। इससे पूर्व सन् 1906 में बड़ौदा–नरेश सैयाजी राव गायकवाड़ ने अपने राज्य में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क व अनिवार्य बना दिया था; और इसी बात से उत्साहित होकर गोखले जी ने अपना उक्त प्रस्ताव केन्द्रीय धारा सभा में रखा था। किन्तु उनका यह प्रयास असफल रहा–आश्वासन मिलने के अलावा कुछ भी नहीं हासिल हो सका। पुनः 16 मार्च सन् 1911 को उन्होंने केन्द्रीय धारा सभा में अपना प्रसिद्ध विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया जिसपर निरन्तर दो दिनों (17 एवं 18 मार्च 1912) तक विचार–विमर्श के उपरांत उनका बिल 13 के मुकाबले 38 मतों से अस्वीकार कर दिया गया। गोखले के अकाट्य तर्कों के बावजूद सरकारी प्रवक्ता सर हरकोर्ट बटलर ने विधेयक का जमकर विरोध किया। फिर भी गोखले का मनोबल कम नहीं हुआ। वे जरा भी हतोत्साहित नहीं हुए, बल्कि उन्होंने बड़ी ही तेजस्वी भाषा में असेम्बली में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त किया। उन्होंने कहा :

"My Lord, I know that my Bill will be thrown out, before the day closes; I make no complaint. I shall not even feel depressed. We, the Indians of the present generation, can only hope to serve our country by our failures..... The bill, thrown out today, will come back again and again, till on the stepping stones of its dead selves, a measure ultimately rises which will spread the light of knowledge throughout the land......"[1]

शिक्षा के अधिकार का कानून :

इस प्रकार भारत में अनिवार्य शिक्षा के इतिहास का पहला अध्याय समाप्त हो गया। किन्तु गोखले द्वारा जलाए गए दीप का प्रकाश बुझा नहीं और क्रमशः देश की आजादी, आजाद भारत के संविधान में 45वें अनुच्छेद के प्रावधान, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 की प्रतिबद्धताओं, और उसके अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण और 'समानता के लिए शिक्षा' सम्बन्धी प्रयास, निरौपचारिक शिक्षा, समग्र साक्षरता अभियान, सर्वशिक्षा अभियान, आदि योजनाओं का क्रियान्वयन करते हुए आज हम उस पड़ाव पर पहुँचे हैं जब 04 अगस्त–2009 को भारतीय संसद द्वारा पारित निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2008 ने दिनांक 01 अप्रैल 2010 से कानून का रूप ले लिया है। वस्तुतः इस कानून की प्रतीक्षा कई दशकों से थी जिसे अब न केवल उपेक्षित और वंचित वर्गों के हित में बल्कि जनसामान्य के हितों की रक्षा और मानवाधिकार की दृष्टि से भी 'मील के पत्थर' के रूप में देखा जा रहा है।

इस कानून का सकारात्मक पक्ष :

इस बात में जरा भी संदेह नहीं व्यक्त किया जा सकता कि 'शिक्षा का अधिकार' कानून का लागू होना देश की प्रगति के लिए एक शुभ लक्षण है। इस कानून के सकारात्मक पक्षों में कदाचित् सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अभी तक देश में कमजोर वर्ग के करोड़ों बच्चों को गरीबी की वजह से शिक्षा से वंचित रह जाना पड़ता था। लेकिन अब कानून का स्वरूप ले लेने से 6–14 आयु वर्ग के सभी बच्चों की शिक्षा का मार्ग प्रशस्त हो गया है।

संदर्भगत विधेयक में मोटे तौर पर कुल दस उद्देश्यों के प्राप्त करने की बात कही गई थी जिनमें निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, राज्यों द्वारा शिक्षा प्रदान करने की दायित्व पूर्ति, संविधान के अनुरूप पाठ्यक्रम, शिक्षा की गुणवत्ता, सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति,

शिक्षकों द्वारा दायित्व निर्वहन और प्रवेश में नौकरशाही प्रवृत्ति की समाप्ति आदि शामिल किये गये थे।[2] ये सभी बिन्दु निश्चित रूप से किसी न किसी मायने में अतिमहत्वपूर्ण हैं।

अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा कानून के अन्तर्गत शिक्षा से जुड़े कुछ अन्य प्रावधानों को भी स्पष्ट किया गया है। इसमें प्राइवेट ट्यूशन पर प्रतिबन्ध, डोनेशन और शारीरिक दण्ड पर रोक जैसे मामले प्रमुख हैं। साथ ही इसमें बच्चों को शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना से बचाने का भी प्रावधान किया गया है। कक्षा आठ तक किसी भी विद्यार्थी को कक्षा से निकालने या फेल करने को भी गैरकानूनी बना दिया गया है।[3]

केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल का दावा तो यह है कि 6–14 वर्ष के बीच की उम्र के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा पाने का अधिकार मिल जाने से शिक्षा हासिल करके अपनी और अपने परिवार की गरीबी दूर करने और विकास की मुख्य धारा में शामिल हो पाने का नया अवसर मिलेगा।[4] सिब्बल ने कहा है कि वह सुनिश्चित करेंगे कि देश के वंचित तबकों के बच्चे इस सुविधा का पूरा फायदा उठा सकें। बच्चों के गाँव की दहलीज पर स्कूल हों और उन्हें पढ़ने के लिए दूर दराज न जाना पड़े।[5] सरकार का मानना है कि वह तीन साल के अन्दर देश के सभी स्कूलों में अच्छी पढ़ाई के लिए सम्पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध करा देगी।[6]

सिक्के का दूसरा पहलू :

निस्संदेह उपर्युक्त सभी बातें बड़ी ही उत्साहवर्धक हैं। देर से ही सही, मनमोहन सिंह सरकार को इस बात के लिए सदैव याद किया जाएगा कि उसने दशाब्दियों से प्रतीक्षित इस फैसले को लागू किया। फिर भी अनेक प्रेक्षकों की राय में जमीनी हकीकतों के मद्देनजर मंजिल अभी दूर है। उदाहरण के लिए :

- एक वरिष्ठ पत्रकार के अनुसार, हकीकत यह है कि दूर–दराज के इलाकों में आज भी अधिकांश स्कूलों की कोई इमारत नहीं है। आजादी के बाद से इमारत, अध्यापक, पाठ्यसामग्री और पेयजल तक से मरहूम ऐसे स्कूलों की तो पहचान कराने में ही, सरकारी चाल के हिसाब से, शायद साल–दो साल बीत जाएँगे।[7] उनका कहना है कि "सच तो यह है कि उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, हिमांचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, और पूर्वोत्तर राज्यों के दूर–दराज और दुर्गम जंगलों और पहाड़ी इलाकों में इससे (सिर्फ कानून बनाने से) काम नहीं चलेगा। इन इलाकों में पीने के पानी तक का पुख्ता इन्तजाम नहीं है। ऐसे हालात में बच्चों को स्कूल न भेजना अभिभावक का बहाना नहीं मजबूरी है।[8] उन्होंने अपने लेख में एक और जमीनी हकीकत की ओर ध्यानाकर्षण करते हुए लिखा है, जिससे कदाचित् हम सभी अवगत हैं, कि "दरअसल गाँव के स्कूलों में शिक्षक नियुक्ति भले ही ले लें, लेकिन वहाँ हाजिरी देना कोई नहीं चाहता। शिक्षा से सम्बन्धित अनेक जाँच कमेटियाँ इस बात की ओर इशारा कर चुकी हैं कि ये स्कूल शहरों से नियुक्ति पाए उन हजारों शिक्षकों के लिए सिर्फ मासिक पगार लेने का माध्यम हैं। वे वहाँ पढ़ाना तो दूर, जाना भी गवारा नहीं करते। भारत के वेहिसाब गाँवों की यही सच्चाई है।[9]

- दूसरे, 'दैनिक जागरण' अखबार के सम्पादक का कहना है कि वर्तमान में 6 से 14 वर्ष की आयुवर्ग के करीब 90 लाख बच्चे ऐसे हैं जो शिक्षा से वंचित हैं। यह एक बड़ी संख्या है और इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि स्कूल न जाने वाले बच्चों की वास्तविक संख्या और अधिक हो सकती है। एक अनुमान के अनुसार इतने बच्चों को शिक्षित करने के लिए करीब 1.71 लाख करोड़ रूपए की जरूरत होगी। इसमें से 55 प्रतिशत धनराशि केन्द्र सरकार और शेष 45 प्रतिशत राज्य सरकारों को खर्च करनी होगी। प्रधानमंत्री के इस आश्वासन पर यकीन न करने का कोई कारण नहीं कि सभी बच्चों को शिक्षित करने में धन की कमी आड़े नहीं आने दी जाएगी, लेकिन इसमें संदेह है कि राज्य सरकारें अपने हिस्से के धन का प्रबन्ध कर पाएँगी।यदि किसी तरह धन का प्रबन्ध हो भी जाए तो भी यह आवश्यक नहीं कि राज्य सरकारें स्कूलों, शिक्षकों और अन्य संसाधनों की कमी दूर करने में तत्परता दिखाएँगी। वैसे भी धन की उपलब्धता किसी कार्य के सम्पन्न होने की गारंटी नहीं, और इसका एक बड़ा प्रमाण सर्वशिक्षा अभियान है, जो दस्तावेजों में जितना सफल है यथार्थ के धरातल पर उतना ही असफल।[10]

- आगे सम्पादक महोदय लिखते हैं, "यह किसी त्रासदी से कम नहीं कि देश की तस्वीर बदल सकने वाले एक महात्वाकांक्षी कानून को अमल में लाने की घोषणा पर राज्य सरकारों का रवैया यह अभास नहीं कराता कि वे एक महती जिम्मेदारी का निर्वाह करने जा रही हैं। चंद राज्यों को छोड़कर ज्यादातर राज्य सरकारों ने शिक्षा अधिकार कानून का कायदे से स्वागत भी नहीं किया। उल्टे कुछ राज्यों ने इस कानून की खामियाँ गिनानी शुरू कर दी हैं। कुछ धन की कमी का रोना रो रहे हैं तो कुछ ऐसी उदासीनता दिखा रहे हैं जैसे यह कानून किसी और देश में लागू हुआ हो। यह अफसोस की बात है कि राज्य सरकारें शिक्षा अधिकार कानून को अपनी जिम्मेदारी कम, एक बोझ मानने के संकेत अधिक दे रहीं हैं।[11]

- पुनः एक रिपोर्टिंग के अनुसार, "शिक्षा के क्षेत्र में जुड़े लोगों का कहना है कि शिक्षा अधिकार बिल असमानता को बढ़ावा ही देगा। उनके अनुसार, सरकारी स्कूलों, राज्य से सहायता प्राप्त स्कूल, विशेष दर्जा स्कूल और गैर सहायता प्राप्त प्राइवेट स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता अलग–अलग दर्जे की हैं और बिल में कहीं समान स्तर की शिक्षा देने की बात नहीं की गई है। वहीं सिब्बल का कहना है कि एक बार शिक्षा के मूलभूत अधिकार तक सभी बच्चों की पहुँच हो जाने के बाद समान स्तर की शिक्षा देने के मामले पर भी कार्य किया जाएगा। कपिल सिब्बल का कहना है कि अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए राज्यों को पाँच वर्ष का समय दिया जाएगा। लेकिन मौजूदा हालात को देखकर इतना तो साफ है कि देश के अलग–अलग क्षेत्रों में अध्यापक–छात्रों के बीच के अनुपात को पटरी पर लाने में अभी लम्बा समय लगेगा।[12]

- इसी क्रम में यदि हम लोग वंचित और गैर–वंचित वर्गों के मध्य शैक्षिक–अन्तरालों सम्बन्धी कुछ तथ्यों पर दृष्टि डालें तो भी यही स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 के लागू होने से अब तक तमाम प्रयासों के बावजूद भी अपेक्षित स्तर तक स्थिति में सुधार नहीं हो सका है। उदाहरण के लिए,

- सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश के कई राज्यों में महिला और पुरुष साक्षरता के मध्य अन्तराल 11 प्रतिशत से 14 प्रतिशत तक पाया गया जिसमें उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, हरियाणा आदि शामिल हैं।[13]
- कुछ ही समय पूर्व अल्पसंख्यक वर्ग में शिक्षा की स्थिति का आकलन करते हुए सच्चर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में यह खुलासा किया था कि मुस्लिम समुदाय में शिक्षा की स्थिति अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से भी कहीं बदतर है।[14]

वस्तुतः शिक्षा अधिकार कानून की मूल भावना तो यह है कि सभी बच्चों को स्कूल की सुविधा मिलने के साथ–साथ अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा भी मिले। इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की वस्तुगत स्थिति जानने के लिए हम "प्रथम" नामक स्वयंसेवी संस्था द्वारा उत्तर प्रदेश के सभी जिलों के 2033 गाँवों में चल रहे स्कूलों में कराये गए सर्वेक्षणों की रिपोर्ट, जो Annual Status Education Report (असर)–2010 के नाम से प्रकाशित की गई है, पर एक संक्षिप्त दृष्टि डाल सकते हैं।

इसके अनेक परिणाम चौकाने वाले हैं। जैसे–

- यू0पी0 में 6 से 14 वर्ष की उम्र के लगभग 95 प्रतिशत बच्चों का स्कूलों में नामांकन है जिनमें केवल 57 प्रतिशत बच्चे ही स्कूलों में आते हैं। आने वालों में भी काफी बच्चे मध्याह्न भोजन के बाद घर लौट जाते हैं।
- सरकारी स्कूलों में कक्षा तीन में पढ़ने वाले 56 फीसदी बच्चे ठीक से हिन्दी नहीं पढ़ पाते।
- कक्षा पाँच के 75 फीसदी छात्र 893 में 5 का भाग नहीं दे सकते।
- हर चार छात्रों में से तीन अरिथमेटिक जाने बगैर प्राइमरी की पढ़ाई पूरी कर लेते हैं।
- कक्षा तीन के 51 प्रतिशत बच्चे एक से सौ तक के बीच की गिनती नहीं जानते।
- कक्षा पाँच में पढ़ने वाले 55 फीसदी बच्चे कक्षा तीन की हिन्दी की किताब नहीं पढ़ सकते।[15]
- कमोवेश ऐसी ही स्थिति देश के अन्य भागों में भी पाई गई है।

भावी रणनीति :

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में स्पष्ट है कि वास्तव में अभी हमें शिक्षा के अधिकार कानून की मूल भावना को साकार करने की दिशा में एक लम्बी दूरी तय करनी है। किन्तु इस बात का मात्र एहसास करने से काम नहीं चलेगा।

जैसा कि अब तक होता आया है, इस देश की अनेक महत्वाकांक्षी शैक्षिक योजनाएँ समुचित क्रियान्वयन के अभाव में वांछित परिणाम नहीं दिला सकीं। हमें इस बात का भी एहसास है कि देश की आजादी के प्रारंभिक काल से लेकर आज तक हमने अपनी प्रारंभिक शिक्षा को उतनी वरीयता नहीं दी जितने की वह अधिकारिणी है। आजादी के बाद हमने अपना ध्यान प्रारंभिक शिक्षा के बजाय क्रमशः उच्च शिक्षा (राधाकृष्णन आयोग, 1948–49) और माध्यमिक शिक्षा (मुदालियर आयोग, 1952–53) पर अधिक केन्द्रित किया और समस्त शिक्षा की नींव (प्राथमिक शिक्षा) को पृष्ठभूमि में डाल दिया जिसका परिणाम आज भी देश में भारी निरक्षरता के रूप में हमारे सामने है। हम इस बात के भी गवाह हैं कि हमारे संविधान

में शिक्षा के अधिकार से ही सम्बन्धित जिन कतिपय शैक्षिक प्रावधानों को एक सीमित समय के लिए ही मान्यता दी गई, उनकी अवधि को हम किन्ही न किन्ही स्वार्थपरक राजनीतिक कारणों से निरन्तर घसीटते रहे हैं।

अतः इन पंक्तियों के लेखकों की आशंका निर्मूल नहीं है कि कहीं संदर्भगत शिक्षा के अधिकार कानून का भी हश्र वैसा ही न हो और यह किन्हीं न किन्हीं कारणों के बहाने कभी पूर्णतया क्रियान्वित ही न हो सके, अथवा कार्यान्वयन में अपेक्षित से कहीं अधिक समय लग जाय। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त बीते अनुभवों व भावी आशंकाओं को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षा अधिकार कानून के सफल क्रियान्वयन हेतु भावी रणनीति के रूप में लेखक त्रय निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत करते हैं :

पहली बात तो यह कि जिन लोगों ने भारतीय समाज की बहुलता और शैक्षिक परिवर्तनों व सुधारों तथा उसके परिणामों को करीब से जाँचा–परखा है, वे इस बात से अवश्य सहमत होंगे कि यह देश अपनी प्रारम्भिक शिक्षा–व्यवस्था को सुधारे बिना संविधान के सामाजिक न्याय, समता, समानता और सामाजिक समरसता के वायदे पूरे नहीं कर सकता है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग व अल्पसंख्यक वर्ग के अधिकांश परिवारों तथा गरीब सवर्णों के पास सरकारी स्कूलों में जाने के अलावा फिलहाल कोई विकल्प नहीं है। किन्तु वहाँ की व्यवस्था, माहौल तथा नगण्य शैक्षिक उपलब्धियाँ जब तक सुधारी नहीं जाएँगी, तब तक शिक्षा व्यवस्था गुणवत्ता रहित ही बनी रहेगी।

दूसरी बात यह कि आज तक केन्द्र की सभी सरकारों ने कोठारी आयोग (1964–66) की इस सिफारिश को कि देश में "समान शिक्षा प्रणाली" (Common School System of Public Education) लागू हो जिसमें "पड़ोसी विद्यालय योजना" (Neighbourhood School Plan) इसका अविभाज्य अंग हो, को लगातार नकारा है। आयोग के शब्दों में :

"The neighbourhood school concept implies that each school should be attended by all children in the neighbourhood irrespective of caste, creed, community, religion, economic condition, or social status; so that there would be no segregation in schools.[16]

इस योजना के लाभों की चर्चा करते हुए आयोग ने लिखा है कि :

"Apart from social and national integration, two other important arguments can be advanced in support of this proposal: In the first place, a neighbourhood will provide 'good' education to children, because sharing life with the common people is, in our openion, an essential ingradient of good education. Secondly, the establishment of such schools will compel the rich, privileged and powerful classes to take an interest in the system of public education and thereby bring about its early improvement.[17]

लेखक–गण की राय में कोठारी कमीशन का यह सुझाव संदर्भगत समस्या के समाधान में विशेष योगदान कर सकता था। ऐसे बहुमूल्य सुझावों की निरन्तर अनदेखी का ही यह परिणाम है कि देश में आज भी दो प्रकार की शिक्षा–व्यवस्था है–एक गरीबों के बच्चों के लिए, और दूसरी, अमीरों के बच्चों के लिए। वस्तुतः शिक्षा–आयोग की सिफारिशों को लागू करना एक राजनीतिक निर्णय होता है, जिसकी शिक्षा के निजीकरण को बढ़ावा देने वाली शक्तियों ने सदैव अनदेखी किया है।

तीसरी और अन्तिम बात यह कि भारत जैसे बहुलतावादी समाज के हित में यह सर्वथा उचित है कि उसकी शिक्षा–संस्थाओं को अपने सामाजिक और शैक्षिक उत्तरदायित्वों व

लक्ष्यों को पूरा करने हेतु पर्याप्त स्वतंत्रता और स्वायत्तता प्राप्त हो—न कि वे सरकार के आलसी, अकर्मण्य अथवा निष्क्रिय अनुचर के रूप में कार्य करने को बाध्य किए जाँय। आज स्थिति यह है कि हमारी शिक्षा दिशासूचक यंत्र बनकर रह गई है—जब जैसी सरकार बनी, शिक्षा को उसकी नीतियों के अनुसार काम करने को बाध्य होना पड़ता है। दरअसल, हर राजनीतिक दल शिक्षा को अपने समर्थन स्तम्भ के रूप में प्रयोग करना चाहता है। परिणामतः हर सत्ता परिवर्तन के साथ शिक्षा तोड़—मरोड़ का शिकार होती रहती है।

यही कारण है कि अनेक शैक्षिक विचारकों ने शिक्षा को सरकार की चौथी शाखा के रूप में (Education as the fourth branch of the Govt.) स्थापित करने के पक्ष में अपना मत रखा है : विधाई (Legislative)] न्यायिक (Judicial) और कार्यकारी (Executive) शाखाओं से बिल्कुल अलग। अपने मत के समर्थन में उनका यह तर्क है कि राजनैतिक हित क्षणभंगुर होते हैं जब कि शिक्षा के सांस्कृतिक हित वार्षिक अथवा पंचवर्षीय चुनावों से कहीं ज्यादा स्थायी और महत्वपूर्ण होते हैं। अतः शिक्षा को राजनीति से विलग करने का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि तब सत्ता और राजनीतिक शक्ति चाहे जितनी जल्दी—जल्दी और चाहे जितने हाथों (दलों) में जाये, विद्यालय की शैक्षिक नीति को कोई आघात नहीं पहुँच सकेगा।[18]

दूसरे शब्दों में इस मत के समर्थकों के अनुसार आज हमें शिक्षा को राजनीतिक स्वार्थों से परे रखने हेतु एक 'अखिल भारतीय शिक्षा संवर्ग' (All India Education Cadre) खड़ा करने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है जिसकी देख—रेख और नियंत्रण में शैक्षिक नीतियों का निर्धारण और कार्यान्वयन अपेक्षाकृत अधिक सफलतापूर्वक संचालित हो सकता है।

यद्यपि इस विचार को कुछ लोग अत्यन्त अतिवादी अथवा अव्यावहारिक कह सकते हैं। किन्तु हम लेखक—गण व्यक्तिगत रूप से ऐसा अनुभव करते हैं कि अब वह समय आ गया है जब शिक्षक, अभिभावक और समस्त राष्ट्रप्रेमी व प्रबुद्ध जन इस पर विचार—मंथन करें और जनतांत्रिक तरीके से इसे एक वैचारिक अभियान का रूप दें; ताकि भारतीय शिक्षा एक समतामूलक समाज के सपने को साकार कर सके।

उपसंहार :

निष्कर्षतः हम यह कहना चाहेंगे कि आर0टी0ई0 कानून की मूल भावनाओं की पूर्ति तभी सम्भव है जब सभी बच्चों का विद्यालयों में नामांकन हो, वे निर्धारित पाठ्यक्रम और 14 वर्ष की आयु पूरा करने तक विद्यालयों में टिके रहें, उन्हें योग्य और कर्मठ शिक्षक उपलब्ध क़राए जाँए, शिक्षक—छात्र अनुपात सही हो, विद्यालय उनके घर के निकट हों, विद्यालय में गुणवत्तापरक पठन—पाठन हेतु पर्याप्त भौतिक एवं मानवीय संसाधन उपलब्ध हों और विद्यालय का वातावरण ममतामय तथा सौहार्द्रपूर्ण हो अन्यथा यह कानून अर्थहीन होकर रह जाएगा।

इसमें जरा भी संदेह नहीं कि संदर्भगत कानून व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास तथा मानवाधिकार की दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण, आकर्षक और सुफलदायी है, किन्तु इसका क्रियान्वयन चुनौती भरा है।

एक अंग्रेजी कवि के शब्दों में :

The woods are lovely, dark and deep,
But I have promises to keep,
And miles to go before I sleep,

and miles to go before I sleep.

इसी प्रकार हमारी सरकारों को भी संकल्प लेना होगा कि शिक्षा अधिकार कानून के लक्ष्य को सही अर्थों में प्राप्त करने हेतु वे निरन्तर कदम आगे बढ़ाते रहेंगी–निद्राहीन, विश्रामहीन, अथक और निर्बाध। केवल तभी हमारी जीत सुनिश्चित हो सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

- नुरूल्लाह एस0 एव नायक जे0पी0, (1955) ए स्टूडेन्ट्स हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन
- इण्डिया, मैक मिलन एवं कम्पनी, पेज 251–52।
- मिश्रा के0 एस0, एजुकेशन ऑफ द डिप्राइव्ड, जर्नल ऑफ एजुकेशन स्टडीज़, भाग–6, नं0 2.2008 पेज–4।
- रिपोर्ट ऑफ द एजुकेशन कमीशन (1964–66), मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, पेज 250–51।
- ब्रूबैचर जे0एस0 (1969), माडर्न फिलासोफिज़ ऑफ एजुकेशन, फोर्थ एडीशन मैक्ग्रा हिल बुक कम्पनी, न्यू यार्क, 1969, पेज 14–15।

---

1. S. Nurullah and J.P. Naik, A Students' History of Education in India, Mac Millan & Co., 1955,pp. 251-52.
2. The Pioneer August, 2009
3. 'हिन्दुस्तान' दैनिक, लखनऊ, अगस्त 2009
4. इरा झा, शिक्षित भारत का सपना, दैनिक जागरण, लखनऊ, 3 अप्रैल, 2010
5. वही
6. वही
7. वही
8. वही
9. वही
10. दैनिक जागरण, लखनऊ, 3 अप्रैल, 2010
11. वही
12. 'हिन्दुस्तान' दैनिक, लखनऊ, अगस्त 2009
13. 'हिन्दुस्तान' दैनिक, लखनऊ, 7.11.2009
14. K.S. Misra, Education of the Deprived, Journal of Educational Studies, Val.6, No.2, 2008,p.4.
15. 'हिन्दुस्तान' दैनिक, लखनऊ, 4 फरवरी, 2011
16. Report of The Education Commission (1964-66), Ministry of Education, Government of India, p.250-51
17. Ibid.
18. J.S. Brubacher, Modern Philosophies of Education, Fourth Edition MC Graw-Hill Book Co., Newyork, 1969,pp.14-15.